

अग्निः प्रथमो देवता (ऋग्वेद 1.31 की विविध भाष्यपरकव्याख्या)

डॉ. मोनिका वर्मा
सह आचार्य, मौलिक सिद्धान्त विभाग,
डॉ. एस.आर. राजस्थान आयुर्वेद विश्वविद्यालय, जोधपुर
Email: drmonika17@gmail.com

वेद वैश्विकचेतना के सर्वोच्चस्तर का चरम निदर्शन है। रजोगुण और तमोगुण से विनिर्मित ऋषियों ने अपने दिव्य अन्तःकरण में सात्विक धियामात्र से अनुभूत ज्ञान को ऋचाओं के रूप में निबद्ध किया। ये ऋचाएं अग्नि, इन्द्र, अश्विनी कुमार, वरुण, विष्णु, रुद्र ब्रह्मणस्पति, उषा, सविता, सूर्य, सोम, मित्र, भग, अर्यमा, ऋभु, सोम आदि देवताओं की स्तुति का परमसाधन हैं। इन स्तुतियों के प्रतिदान में ऋषियों द्वारा गौ, अश्व, वाज, शत्रुविजय एवं प्रभूत सन्तति की याचना करते हुए देवताओं के स्वरूप एवं कर्मों का वर्णन है और यही मन्त्रों की संक्षिप्त विषयवस्तु है।

इस सम्बन्ध में सहज ही जिज्ञासा होती है कि वे ऋषि जो प्रकृतिस्थ कहे गये हैं तथा जिनमें लेशमात्र भी रज और तम नहीं है, जिनके वचन मुक्तकण्ठ से अपौरुषेय कहे गए हैं क्या ये वही वेद है जिसमें सामान्य मनुष्यों की ईर्ष्या, लोभ, लालच, मोह मत्सरता जैसे भाव कविता में व्यक्त हुए हैं? क्या ये ऋषि हमारे जैसे ही तुच्छ मनोवृत्ति वाले मनुष्य थे? ऐसी ही जिज्ञासा समय-समय पर उत्थित हुई है। इसके प्रमाण के रूप में यास्ककृत निरुक्त में प्राप्त होता है जहां यास्क वैदिक ऋचाओं के त्रिविध अर्थ की ओर संकेत करते हैं - तास्त्रिविधा ऋचः। परोक्षकृताः। प्रत्यक्षकृताः। आध्यात्मिक्यश्चा¹ अर्थात् ऋचाएं तीन प्रकार की होती हैं -परोक्ष, प्रत्यक्ष एवं आध्यात्मिक। यदि इस विचार को आधार बनाकर अध्ययन किया जाये तो वेदों में निगूढ तत्त्व का प्रकाशन संभव है। इसी आधार पर मैंने अग्नि सूक्त 1.31 के विश्लेषण का प्रयास किया है।

अग्निसूक्त - ऋग्वेद प्रथम मण्डल 1/31, आंगिरस हिरण्यस्तूप ऋषि , अग्नि देवता।

प्रथम मन्त्र- त्वमग्ने प्रथमो अङ्गिरा ऋषिर्देवो देवानामभवः शिवः सखा।
तव व्रते कवयो विद्वानापसो अजायन्त मरुतो भ्राजदृष्टयः॥

सायणकृत अर्थ- हे अग्नि तुम प्रथम अंगिरा ऋषि तथा देवों के कल्याणकारी सखा देव हुए। तुम्हारे कर्म में मेधावी, ज्ञानसम्पन्न, दीप्तमान आयुध वाले मरूद् देवता उत्पन्न हुए।

दयानन्दकृत अर्थ- हे अग्ने (आप) ही प्रकाशित और विज्ञानस्वरूप युक्त जगदीश्वर, जिस कारण (त्वम्) आप (प्रथमः) अनादिस्वरूप अर्थात् जगत्कल्प की आदि में सदा वर्तमान(अङ्गिरा) ब्रह्माण्ड के पृथ्वी आदि, शरीर के हस्त पाद आदि अङ्गी के रस रूप अर्थात् अन्तर्यामी (ऋषि) सर्व विद्या से परिपूर्ण वेद के उपदेश करने वाले और (देवानाम्) विद्वानों के (देवः) आनन्द उत्पन्न करने (शिव) मंगलमय तथा प्राणियों को मंगल देने वाले (सखा) उनके दुःख दूर करने से सहायकारी (अभवः) होते हो और जो (विद्वानापसः) ज्ञान के हेतु कामयुक्त (मरुतः) धर्म को प्राप्त मनुष्य (तव) आप की (व्रते) आज्ञा नियम में रहते हैं, इससे वही (भ्रातदृष्टयः) प्रकाशित अर्थात् ज्ञान वाले (कवयः) कवि विद्वान् (अजायन्त) होते हैं।

अरविन्द कृत अर्थ- हे अग्ने तु प्रथम अङ्गिरस हुआ है, ऋषि, देवों का देव, शुभ सखा है। तेरी क्रिया के नियम(व्रत) में मरुत् अपने चमकीले भाले के साथ उत्पन्न होते हैं, जो क्रान्तदर्शी हैं और ज्ञान के साथ कर्म करने वाले हैं।

अपने मन्त्र के विश्लेषण में अरविन्द कहते हैं कि अग्नि अंगिरा में दो भाव विद्यमान हैं- ज्ञान और क्रिया । प्रकाशयुक्त अग्नि और प्रकाशयुक्त मरुत् अपने प्रकाश द्वारा ज्ञान के द्रष्टा, ऋषि और कवि हुए और ज्ञान के प्रकाश द्वारा शक्तिशाली मरुत् अपना कार्य करते हैं क्योंकि वे अग्नि के व्रत में -उसकी क्रिया के नियम में उत्पन्न हुए हैं या आविर्भूत हुए हैं। अरविन्द के अनुसार वेद का आन्तरिक भाव आध्यात्मिक, सार्वभौम एवं निर्वैयक्तिक है। यज्ञ प्रक्रिया के द्वारा मानव स्वयं को उच्चतर शक्तियों के प्रति समर्पित करता है तथा उसका प्रतीकात्मक रूप यजन के रूप में प्राप्त होता है। अग्नि का प्राथम्य इसलिये भी है कि उसके बिना यज्ञीय ज्वाला आत्मा की वेदी पर प्रदीप्त नहीं होती क्योंकि अग्नि परमात्मा की एक ज्ञानप्रेरित शक्ति है।

भाष्यों का तुलनात्मक अध्ययन करने पर मुझे यह प्रतीत होता है कि सायण ने अग्नि के स्वरूप का निरूपण यज्ञीय परम्पराओं के आधार पर किया है। अग्नि का प्राथम्य अनेक प्रकार से स्तुत है- **अग्निर्मुखं प्रथमो देवतानाम्**² अथवा **अग्निरे प्रथमो देवतानाम्**³। अग्नि का प्राथम्य निर्वचनानुकूल है। अग्नि के निर्वचन में यास्क कहते हैं- **अग्निः कस्मात्? अग्रणीर्भवती। अग्रं यज्ञेषु प्रणीयते**⁴। ऐसा प्रत्यक्षदृष्ट भी है क्योंकि यज्ञ के प्रारम्भ में अग्नि का प्रथमतः प्रज्वलन देखा जाता है तत्पश्चात् यज्ञ के अन्य कर्म प्रारम्भ होते हैं। मन्त्र के श्रवण पर अग्नि का बिम्ब किस प्रकार निर्मित होता है, सायण उस दृष्टि से विचार करते हैं अतः उनके भाष्य में अग्नि किसी कथा के नायक के रूप में चित्रित होते हैं। अग्नि सबसे पहले यज्ञ में लाया जाता है अतः वह प्रथम है। यह ऋचा का प्रत्यक्ष अर्थ है । परन्तु दयानन्द सीधे ही परमेश्वर की सत्ता का स्तवन करते हैं, भौतिक अग्नि यहां गौण है। क्योंकि ऋग्वेद (1/1/1) के भाष्य में वे स्पष्ट करते हैं- **सर्वेषु यज्ञेषु पूर्वमीश्वरस्यैव प्रतिपादनात् तस्यात्र ग्रहणम्**। परमेश्वर प्रकाशरूप है अतः मुख्य है और यहां परमेश्वर के उस ज्वलन्तस्वरूप को ही स्वामी दयानन्द ने शब्दित किया है इस प्रकार दयानन्द की दृष्टि में यहां कर्मकाण्ड की गौणता प्रतीत होती है।

द्वितीय मन्त्र- त्वमग्ने प्रथमो अङ्गिरस्तमः कविर्देवानां परि भूषसि व्रतम्।

विभुर्विश्वस्मै भुवनाय मेधिरो द्विमाता षयुः कतिधा चिदायवे।।

सायणकृत अर्थ- हे अग्नि तुम प्रथम अङ्गिस्तम हो क्रान्तद्रष्टा अग्नि तुम देवताओं के कर्म को अलङ्कृत करते हो । मेधावान् और विभु और द्विमाता अग्नि इस लोक और मनुष्यों के लिये कितने स्वरूपों में शयन करते हैं?

दयानन्द कृत अर्थ- हे (अग्ने) सब दुखों के नाश करने वाले और सब दुष्ट शत्रुओं का दाह करने वाले जगदीश्वर या सभासेनाध्यक्ष जिस कारण (त्वम्) आप (प्रथम)अनादिस्वरूप या पहले मानने योग्य(शयु) प्रलय में सब प्राणियों को सुलाने (मेधिरो) सृष्टि समय में सब को जिलाने (द्विमाता) प्रकाशवान या लोगों के निर्माण अर्थात् सिद्ध करने या तद्विद्या जानने वाले(अंगिरस्तमः) जीव प्राण और मनुष्यों में अति उत्तम(विभु) सर्वव्यापक या सभा सेना के अंगों से शत्रु बलों में व्याप्त स्वभाव(कवि) और सबको जानने वाले हैं(चिद्) उसी कारण से (आयवे) मनुष्य या (विश्वस्मै) सब(भुवनाय) संसार के लिये (देवानाम्) विद्वान् सूर्य और पृथ्वी आदि लोकों के (व्रतम्) धर्मयुक्त नियमों को कई प्रकार से (कतिधा) सुषोभित करते हो । इस मन्त्र में दयानन्द ने मन्त्रार्थ में श्लिष्ट पदों के प्रयोग से परमेश्वर की सत्ता को कीर्तित किया है।

यदि सायण की व्याख्या का विश्लेषण किया जाये तो उन्होने भी अग्नि की महिमा को प्रशंसित किया है और अग्नि को अंगिरस्तम और देवों में क्रान्तद्रष्टा देव के रूप में चित्रित किया है। द्विमाता पद के प्रयोग से सायण ने अग्नि के दो अरणियों में उत्पन्न होने वाले सामान्य अर्थ के साथ आधिदेविक अर्थ में दो लोकों का निर्माता यह अर्थ किया है- **द्वयोः अरण्योः उत्पन्नः वा द्वयोः लोकयोः निर्माता** । अग्नि में प्रदत्त हवि इस लोक से उस लोक को योजित करती है अतः वह वस्तुतः मनुष्यों के लिये दोनों लोक का निर्माता तो है ही साथ ही वह पृथ्वीलोक को ब्युलोक से सम्बद्ध करने के कारण यदि द्विमाता के रूप में स्तुत हो तो भी अतिशयोक्ति नहीं होगी। अग्नि मनुष्यों के घर सदैव निवास करते हैं। निवास की इस स्थिर अवस्था को बताने के लिये सायणाचार्य ने शयुः इस क्रियाविशेषण का प्रयोग किया है। इसी प्रकार विद्वानापसः का अर्थ सायण ने विद् ज्ञानेन और विद्म वेदने इन धातुओं से निष्पन्न स्वीकृत करके **विद्वानानि अपांसि येषां ते** अर्थात् **ज्ञानेन व्याप्नुवानाः वा ज्ञातकर्माणो वा** इस प्रकार किया है।

कवि, यह पद स्वयं में ही अद्वितीय प्रतिभा का वाचक है। (1/1/5) के भाष्य में सायण कवि पद पर टिप्पणी देते हुए कहते हैं- कविशब्दोऽत्र क्रान्तवचन न तु मेधावीनाम्। निरुक्तकार के अनुसार कविशब्द मेधावी नामों में पठित है- मेधावी कविः क्रान्तदर्शनो भवति कवतेर्वा⁵ महीधर के अनुसार- अतीतानागतदूरेणवर्तिपदार्थानां यस्य युगपज्ज्ञानं स कविः⁶ अरविन्द के अनुसार - कवि का अर्थ है द्रष्टासे दिव्य या अतिमानसिक ज्ञान हो⁷ वेद के आधुनिक व्याख्याकारों ने वेद की आध्यात्मपरक व्याख्या को महत्त्व प्रदान किया है। प्रथम और द्वितीय दोनों मन्त्रों की व्याख्या के सन्दर्भ में वैदिक अध्येत्री डॉ. श्रद्धा चौहान अपनी व्याख्या में कहती हैं कि प्रज्ञानब्रह्मरूप अग्नि वह ज्ञानाग्नि है जिसके व्रत में मरुत् प्राण "विद्वानाः अपसः कवयः" हो जाते हैं और जो स्वयं प्रथम अंगिरा ऋषि कहलाता है। यही वह प्रथम अंगिरस्तम है जो मनुष्य के लिये अनेक रूप धारण करने वाला मेधिर कहलाता है।⁸

तृतीय मन्त्र- त्वमग्ने प्रथमो मातरिश्चन आविर्भव सुक्रतुया विवस्वे।

अरेजेतां रोदसी होतृवूर्ये असन्नोभारमयजो महो वासो।।

सायण- हे प्रथम मातरिश्वा अग्नि तुम सुन्दर कर्म वाले यजमान के लिये मुख्य होकर स्थित होते हो। तुम्हारे प्रभाव से द्यावा और पृथ्वी कम्पित होते हैं। होता के वरणीय भार को वहन करने वाले हे निवास का कारण अग्नि तुमने महान् देवों की उपासना की थी।

दयानन्द- हे (अग्ने) परमात्मन् वा विद्वान्(प्रथमः) अनादिस्वरूप या समस्त कार्यों में अग्रगन्ता(त्वम्) आप जिस (सुक्रतुया) श्रेष्ठ बुद्धि और कर्मों को सिद्ध कराने वाले पवन से (होतृवूर्ये) होताओं को ग्रहण करने योग्य(रोदसी) विद्युत् और पृथ्वी(अरेजेताम्) अपनी कक्षा में घूमा करते हैं उस(मातरिश्चने) अपनी आकाश रूपी माता में सोने वाले पवन या (विवस्वते) सूर्यलोक के लिये उनको (आवि भवः) प्रकट कराइये हे (वासो) सबको निवास करवाने वाले, आप शत्रुओं को (असन्नोः) विनाश कीजिये जिनसे (महः) बड़े-बड़े (भारम्) भारयुक्त यान को (अयजः) देश-देशान्तर में पहुंचाते हो उनका बोध हमको कराइये।

सायण ने अग्नि को मातरिश्वा में प्रथम मानकर सम्बोधित किया है अपनी इस मान्यता में वे निरुक्तकार को उद्धृत करते हैं - अग्निर्वायुरादित्यः⁹ और इसी को विवृत करते हैं-वाय्वपेक्षतया मुख्यत्वात् सर्वत्र मुख्यत्वावगमात्। मातरिश्वा पद को वे इस प्रकार स्पष्ट करते हैं-निर्माणहेतुत्वात् माता अन्तरिक्षम्। तत्रश्चसिति प्राणितीति मातरिश्वा। दयानन्द ने इसका अर्थ आकाश में सोने वाली वायु किया है। इसी प्रकार विवस्वते पद का अर्थ सायण ने - विवासतिः परिचरणकर्मा इस प्रकार किया है। विवास् धातु से क्विप्, उपधाह्रस्व तथा मतुँप् का प्रयोग एवं म को व होकर विवस्वत् पद के चतुर्थ्यन्त रूप का सायण ने परिचरते यजमानाय ऐसा अर्थ किया है। दयानन्द के अनुसार इसका अर्थ होगा सूर्यलोक के लिये। डॉ. श्रद्धा चौहान ने विवस्वते पद का अर्थ किया है वासनारहिता¹⁰

इसी प्रकार होतृवूर्ये यह पद भी विवेचनीय है। सायण ने इसका अर्थ होता त्रियते इति होतृवूर्ये यज्ञं किया है तथा इसकी विवृति वे होतृवरणयुक्ते कर्मणि इस प्रकार करते हैं। दयानन्द ने होताओं को ग्रहण करने योग्य इस प्रकार अर्थ किया है। असन्नोः का अर्थ सायण ने ऊढवानसि किया है दयानन्द इसका अर्थ करते हैं (शत्रुओं का) विनाश कीजिये। भारं को सायण ने होतृवूर्ये से संयुक्त किया है इस कारण यह वरेण्य कर्म का विषेषण प्रतीत होता है। इसके विपरीत दयानन्द ने भारं को महः से संयुक्त करके भारं अयजः का अर्थ किया है बड़े-बड़े भारयुक्त यान को देशदेशान्तर में पहुंचाते हो।

दोनों ही मन्त्रों की व्याख्या नितान्त भिन्न प्रतीत होती है क्योंकि सायण के समक्ष यज्ञवेदी में प्रज्वलित अग्नि और प्राचीन मान्यताएँ है इसके विपरीत दयानन्द के समक्ष निराकारी ईश्वर, जो सभी मूल कार्यों का कारण है। अपने मन्त्र के भावार्थ को स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं कि कारण रूप अग्नि अपने कारण और वायु के निमित्त से सूर्य रूप से प्रसिद्ध तथा अन्धकार का विनाश करके पृथिवी या प्रकाश का धारण करता है वह यज्ञ वा शिल्पविद्या के निमित्त से कलायन्त्रों में संयुक्त किया हुआ बड़े-बड़े भारयुक्त विमान आदि को शीघ्र ही देश-देशान्तर में पहुंचाता है। इस मन्त्र में अग्नि को मातरिश्वा से प्रथम माना गया है क्योंकि अग्नि के कारण ऋत्विजों में अच्छे कर्म की प्रेरणा प्राप्त होती है, इस आधार पर आध्यात्मिक रूप में अग्नि संकल्पशक्ति प्रतीत होते हैं।

इन दोनों मन्त्रों के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि सायण की दृष्टि कर्मकाण्ड की परम्परा का अनुसरण करती है इसके विपरीत दयानन्द की दृष्टि विज्ञानपरक प्रतीत होती है। सायण के समक्ष वेदमन्त्रों के संरक्षण तथा कर्मकाण्डीय विधि के संरक्षण की परम्परा थी अतः उनकी दृष्टि आधिभौतिक प्रतीत होती है परन्तु दयानन्द के समक्ष सुप्त और गर्हित भारतीयता के उत्थान का प्रश्न था, इसके अतिरिक्त भारतीय कर्मकाण्ड के विज्ञान से अनभिज्ञ पाश्चात्यसत्ता ने इन्हीं कर्मकाण्डों का प्रयोग भारतीयता के दमन में किया अतः दयानन्द ने वैदिक मन्त्रों के उस अर्थ को प्रकट किया जो विशुद्ध आध्यात्मिक चेतना को विवृत करते हैं।

चतुर्थ मन्त्र - त्वमग्ने मनवे द्यामवाशयः पुरुरवसे सुकृते सुकृतरः।

श्वात्रेण यत्पित्रोमुच्यसे पर्या त्वा पूर्वमनयन्नापरं पुनः॥

सायणकृत अर्थ- हे अग्नि तु मनु पर अनुग्रह करने के कारण द्युलोक को प्रकाशित करते हो। आपकी उपासना करने वाले पुरु नामक राजा के लिये और अधिक षोभन कर्म वाले हो। जब तुम दोनों पिताओं से पीछे ही मुक्त होते हो तब तुमको पूर्व में तथा पुनः पश्चिम दिशा में स्थापित करते हैं।

दयानन्दकृत अर्थ- हे जगदीश्वर अत्यन्त सुकृत कर्म करने वाले सर्व प्रकाशक आप जिसके बहुत से उत्तम-उत्तम वचन हैं और अच्छे-अच्छे कामों को करने वाला है उस ज्ञानवान् विद्वान् के लिये आप उत्तम सूर्यलोक को प्रकाशित किये हुए हैं। विद्वान् लोग धन और विज्ञान के साथ वर्तमान पूर्वकल्प या पूर्वजन्म में प्राप्त होने योग्य और इसके आगे जन्म-मरण आदि से अलग प्रतीत होने वाले आपको पुनः-पुन प्राप्त होते हैं। हे जीव जिस परमेश्वर को वेद और विज्ञान के साथ उपदेश से प्रतीत कराते हैं जो तुझे धन और विज्ञान के साथ वर्तमान पिछले अगले देह को प्राप्त कराता है और जिसके उत्तम ज्ञान से मुक्त दशा में माता और पिता से तू सब प्रकार के दुःखों से छूट जाना तथा जिसके नियम से मुक्ति से महाकल्प के अन्त में फिर संसार में लाता है, उसका विज्ञान या सेवन तू अच्छी प्रकार कर।

दोनों ही मन्त्रों के कथनार्थ में पर्याप्त भिन्नता प्रतीत होती है। मनवे का अर्थ सायण **मनोरनुग्रहार्थम्** करते हैं इसका अर्थ है मनु पर कृपा करने के कारण। दयानन्द इसका अर्थ करते हैं- **ज्ञानवान् विद्वान् के लिये**। डॉ. श्रद्धा चौहान ने मनु का अर्थ-मननशील आत्मचेतना किया है¹¹ डॉ. चौहान के अनुसार सजात प्राणों को वेद में पूर्वे देवा के नाम से भी अभिहित किया जात है। वस्तुतः ये मनुष्य के उस पूज्य व्यक्तित्व के स्वामी हैं जो माता के गर्भ से नितान्त असहायावस्था में जन्म लेता है। पूर्वे देवाः अथवा सजाता नामक प्राण उनको गर्भ में धारण करते हैं और नवजात शिशु को स्तनपानादिक पोषण क्रिया में समर्थ बनाते हैं।¹² इसी प्रकार अवाशयः का अर्थ सायण **शब्दितवान्** करते हैं और इसकी विवृति में कहते हैं- **पुण्यकर्मभिः साध्यो द्युलोकं प्रकटितवानसि परन्तु दयानन्द अवाशयः का अर्थ प्रकाशित किये हुए करते हैं तथा द्याम का अर्थ सूर्यलोक करते हुए अवाशयः को उसके साथ सम्बद्ध करते हैं। पुरुरवसे पद की निरुक्ति सायण ने इस प्रकार किया है-पुरु रौतीति पुरुरवा अर्थात् पुरुरवा नामक राजा वाचस्पत्यम् में इसका अर्थ पुरु प्रचुरं स्यात्तथा रौतीति पुरुरवा ऐसा प्राप्त होता है। दयानन्द ने पुरुरवा का आशय किया है- जिसके बहुत सारे उत्तम-उत्तम विद्यायुक्त वचन है ऐसा वह विद्वान्।**

श्वात्रेण पद का अर्थ सायण ने **क्षिप्रमन्थनेन** किया है और दयानन्द ने **धन और विज्ञान के साथ वर्तमान** किया है। इसी प्रकार **पूर्वमनयन्नापरं पुनः** इस अंश को सायण ने अग्निहोत्र की क्रिया से सम्बद्ध किया है-**पूर्व वेदेः पूर्व देशम् आ अनयन्आहवनीयत्वेन स्थापितवन्तः। पुनःपञ्चात् अपरं पश्चिमदेशम्आ अनयन् गार्हपत्यरूपेण प्रापितवन्तः। आहवनीयकर्मानुष्ठानादूर्ध्वं गार्हपत्यरूपेण धारितवन्तः इत्यर्थः।** इसके विपरीत दयानन्द ने **पूर्व और पिछला जन्म** किया है

सायण की दृष्टि पौराणिक कथा के अनुसार ऐतिहासिक अर्थ प्रकाशन में प्रतीत होती है वहीं दयानन्द ने विशुद्ध अर्थ प्रकट किया है वहां किसी प्रकार का आवरण नहीं है। मनु की विद्वता सहज ग्राह्य है अतः सायण ने मनवे से सूर्यपुत्र मनु का ग्रहण किया है और दयानन्द ने ज्ञानवान् विद्वान् अर्थ किया है और वह कोई भी हो सकता है। सायण का झुकाव परम्परागत प्रतीकात्मकपैली के प्रति उदार प्रतीत होता है इसके विपरीत दयानन्द निराकार सत्ता के वाच्यार्थ को प्रस्तुत करते हैं।

पंचम मन्त्र- त्वमग्ने वृषभः पुष्टिवर्धन उद्यतसूचे भवसि श्रवाय्यः।

य आहुतिं परि वेदा वषट्कृतिमेकायुरग्ने विष आविवाससि॥

जम्बूद्वीप the e-Journal of Indic Studies

Volume 2, Issue 2, 2023, p. 1-12, ISSN 2583-6331

©Indira Gandhi National Open University

सायणकृत अर्थ- हे कामनाओं के पूरक, धनादिरूपपोषण की अभिवृद्धि के हेतु अग्नि तुम यजमान द्वारा मन्त्रों से श्रवणीय हो। जो वषटाकार आहुति को सम्यक् रूप से जानता है (सभी देवों में) मुख्य और प्रथम (तुम उस यजमान को) तदनुकूल प्रजाओं से सम्पन्न करते हो।

दयानन्दकृत अर्थ- हे अग्ने यज्ञक्रिया फलवित् जगद्गुरो परेश जो आप प्रथम सुक् अर्थात् होम ग्रहण करने वाली वस्तु चढाने के पात्र को अच्छे प्रकार से ग्रहण करने वाले मनुष्य के लिये सुनने सुनाने योग्य और सुख बढाने वाले एक सत्य गुण कर्म स्वभाव रूप वर्तमान युक्त तथा पुष्टिवर्धन करने वाले होते हैं। जो आप जिसमें कि उत्तम-उत्तम क्रिया की जाये तथा जिसमें धर्मयुक्त आचरण किये जाये उसका विज्ञान कराते हैं। प्रजा पुष्टि वृद्धि के साथ उन आप और सुखों को अच्छे प्रकार से सेवन करती है।

इन दोनों ही मन्त्रों में यजनकर्ताओं के लिये कामनापूर्ति, पुष्टिवर्धन तथा प्रजाभिवर्धन का कथन किया गया है और दोनों ही भाष्यों में इन पदों के अर्थों में साम्य मिलता है। परन्तु जहां सायण एकायुः का अर्थ **मुख्यत्वात्** करते हैं वहीं दयानन्द ने इसका अर्थ-एक सत्य गुण कर्म स्वभाव रूप वर्तमान युक्त किया है। इसी प्रकार वषट्कृतिम् का अर्थ सायण-**वषटाकारं युक्तामाहुतिम्** इस प्रकार करते हैं वहीं दयानन्द इसका अर्थ **जिससे कि उत्तम-उत्तम क्रिया की जाये** ऐसी वृद्धि इस प्रकार अर्थ करते हैं। डॉ. श्रद्धा चौहान ने विष् का अर्थ विष् प्रवेशने धातु के आधार पर अन्तःप्रविष्ट चेतना किया है।¹³

दयानन्द की दृष्टि वैदिक यजन की श्रेष्ठता के साथ उनकी शुद्धता पर भी थी और इसी प्रकार का पवित्र यजन सभी सुखों का कारण होता है। मुझे इस भाष्य से उनका मन्तव्य यह प्रतीत होता है कि वे यजन के तो समर्थक थे परन्तु आडम्बर और व्यर्थ के प्रपंच के प्रति अनुदार थे।

छठा मन्त्र- त्वमग्ने वृजिनवर्तनिं नरं सकमन्पिपिं विदथे विचर्षणे।

यः शूरसाता परितकम्ये धने दग्नेभिष्चित्समृता हंसि भूयः॥

सायण कृत अर्थ- हे विशिष्ट ज्ञानयुक्त अग्नि तुम सदाचार से हीन मनुष्य को सत्कर्मनिष्ठान में युक्त करते हो। धन के विषय में शूरवीरों द्वारा करणीय युद्ध के उपस्थित होने पर अल्पशौर्यरहित पुरुष से युक्त जो तुम प्रतिपक्षी शत्रुओं को मारते हो।

दयानन्द कृत अर्थ- हे सब पदार्थों का सम्बन्ध कराने अनेक प्रकार के पदार्थों को अच्छे प्रकार से देखने वाले राजनीतिविद्या से शोभायमान सेनापति जो तु धर्मयुक्त यज्ञरूपी संग्राम में थोड़े ही साधनों से अधर्म मार्ग में चलने वाले मनुष्य और बहुत शत्रुओं का हननकर्ता है और अच्छे प्रकार से सत्यकर्मों का पालनकर्ता है और जो पराये पदार्थों के हरने की इच्छा से सब ओर देखने योग्यसुवर्ण विद्या और चक्रवर्ती राज्य आदि धन की रक्षा करने के निमित्त आप हमारे सेनापति होइये।

सप्तम मन्त्र- त्वं तमग्ने अमृतत्वे मर्तं दधासि श्रवसे दिवेदिवे।

यस्तातृषाण उभयाय जन्मने मयः कृणोषि प्रय आ च सूरये॥

सायण कृत अर्थ- हे अग्ने तुम उस मनुष्य को अन्न के लिये मरणरहित पद में धारण करते हो जो प्रतिदिन द्विजन्मना (आपके) लिये तृष्णायुक्त होता है ऐसे उस विद्वान् के लिये सुख और अन्न को करते हो।

दयानन्द कृत भाष्य- हे अग्नि हे जगदीश्वर आप जो बुद्धिमान मनुष्य प्रतिदिन सुनने योग्य अपने लिये मोक्ष को चाहता है उस मनुष्य को है, उस बुद्धिमान सज्जन के लिये सुख और प्रसन्नता को सिद्ध करते हो

अष्टम मन्त्र- त्वं नो अग्ने सनये धनानां यशसं कारु कृणुहि स्तवानः।

ऋध्याम कर्मापसा नवेन देवैर्द्वावापृथिवी प्रावतं ना।

सायण कृत भाष्य- हे स्तूयमान अग्नि तुम हमारे लिये धन का दान करने वाले यशस्कर्ता (पुत्रों को) करो। (आपके द्वारा) पुत्रों से हम कर्म करें। अन्य देवताओं के साथ द्यावापृथिवी हमारी प्रकर्ष रूप से रक्षा करें।

दयानन्द कृत भाष्य- हे कीर्ति और उत्साह को प्राप्त कराने वाले जगदीश्वर या परमेश्वरोपासक आप स्तुति को प्राप्त होते हुए हम लोगों के विद्या सुवर्ण चक्रवर्ती राज्य प्रसिद्ध धनों के यथायोग्य कार्यों में व्यय करने के लिये कीर्तियुक्त उत्साह से कर्म करने वाले उद्योगी मनुष्य को नियुक्त कीजिये जिस से हम लोग पुरुषार्थ से नित्य बुद्धियुक्त होते रहे और आप दोनों विद्या की प्राप्ति के लिये विद्वानों के साथ करते हुए हम लोगो की और सूर्य प्रकाश और भूमि की रक्षा कीजिये।

दशम मन्त्र- त्वं नो अग्ने पित्रोरुपस्थ आ देवो देवेश्वनवद्य।

तनूकृद्धोधि प्रमतिश्च कारवे त्वं कल्याण वसु विश्वमोपिषे।।

सायणकृत अर्थ- हे दोषरहित अग्नि सभी देवों में जागरूक देव तुम हमें पुत्ररूप में जानो। यजमान के लिये सुन्दर मति वाले कल्याणकारक तुम सम्पूर्ण धन का वपन करो।

दयानन्द कृत अर्थ- हे उत्तम कर्मयुक्त सभी पदार्थों को जानने वाले सभापते धर्मयुक्त पुरुषार्थ में जागने, सब प्रकाश करने वाले और बड़े-बड़ पृथ्वी आदि बड़े लोकों में ठहरने वाले आप विद्वान् या अग्नि आदि तेजस्वी दिव्य गुणयुक्त लोकों में माता-पिता के समीपस्थ व्यवहार में हम लोगों को बार- बार नियुक्त कीजिये। हे अत्यन्त सुख देने वाले राजन उत्तम ज्ञान देते हुए आप कारीगरी के चाहने वाले मुझ को विद्या, चक्रवर्ती राज्य पदार्थों से सिद्ध होने वाले समस्त धन का अच्छी प्रकार से बोध कराइये।

दशम मन्त्र- त्वमग्ने प्रमतिस्त्वं पितासि नस्त्वं वयस्कृत्वव जामयो वयम् ।

सन्त्वा रायः शतिनः सं सहस्रिणः सुवीरं यन्ति व्रतपामदाभ्य ॥

सायणकृत अर्थ- प्रकृष्ट मति वाले अग्नि तुम हमारे पिता हो, तुम हमारी आयु को करने वाले हो हम तुम्हारे बन्धु हैं। हे अहिंसनीय अग्नि तुमसे कर्म करने वाले सुन्दर पुत्र युक्त सैकड़ों (और) सहस्रों धन (हमारी ओर) सम्यक् रूप से जाते हैं।

दयानन्दभाष्य- हे उत्तम कर्मयुक्त यथायोग्य रचनाकर्म जानने वाले सभाध्यक्ष, अत्यन्त मान को प्राप्त हुए, समस्त गुण को प्रकट करने वाले आप हम लोगों के पालने वाले तथा आयुर्दा के बढवाने वाले तथा आप हम लोगों को बढ़ापे तक विद्या सुख में आयुर्दा व्यतीत करवाने वाले हैं। सुख उत्पन्न करने वाले आपकी कृपा से हम लोग ज्ञानवान सन्तान से युक्त हा दयायुक्त आप वैसा प्रबन्ध कीजिये और जैसे सैकड़ों वा हजारों प्रशंसित पदार्थ विद्या वा कर्मयुक्त विद्वान् लोग सत्य पालने वाले अच्छे-अच्छे और वीरयुक्त आपको प्राप्त होकर धन को अच्छी प्रकार प्राप्त होते हैं, वैसे आपका आश्रय किये हुए हम लोग भी उन धनों को प्राप्त होवें।

एकादश मन्त्र - त्वामग्ने प्रथममायुवे देवा अकृण्वन्नहुषस्य विश्वपतिम् ।

इळामकृण्वन्मनुष्यस्य शासनीं पितुर्यत्पुत्रो ममकस्य जायते ॥

सायणकृत भाष्य- हे अग्नि देवताओं पहल ने आयु के लिये तुमको नहुष का सेनापति, इळा को मनुष्य की धर्मोपदेशिका किया, जिस समय तुमने मेरे पिता अंगिरा के (तुम) पुत्र रूप हुए।

दयानन्द कृत भाष्य - हे अमृतरूप सभापते तू जैसे विद्वान् लोग सत्यासत्य के निर्णय का निमित्त चार वेद की वाणी को करें। मनुष्य के विशेष ज्ञान के लिये जिससे सब विद्या और धर्माचार युक्त नीति से उसको ग्रहण करके अनादिस्वरूप जिस न्याय से प्रजा योग्य प्राप्त होने प्रजा पुत्र आदि की रक्षा करने वाले सभापति राजा को चारो वेदो की वाणी व सत्य व्यवस्था को प्रकाशित करते हैं वैसे ही ज्ञानवान मनुष्य की जो वेदवाणी है उसको आप प्रकाशित कीजिये ।

उक्त मन्त्र में बड़ी गूढ चर्चा प्राप्त होती है जो किसी अन्तरीक्षीय घटना की ओर संकेत करती है क्योंकि इस प्रकार की चर्चा अन्यत्र भी प्राप्त होती हैं- आकाशीय अग्नि सूर्य और सूर्यजन्य रश्मि का मिथुन अग्न्यादि देवों की उत्पत्ति में कारण है और इसका संकेत इस मन्त्र से ज्ञात होता है-

यदेदेनमदधुर्यज्ञियासो दिवि देवाः सूर्यमादितेयम्।

यदा चरिष्णू मिथुनाभूतामादित् प्राप्यन् भुवनानि विश्वा।।¹⁴

जम्बूद्वीप the e-Journal of Indic Studies

Volume 2, Issue 2, 2023, p. 1-12, ISSN 2583-6331

©Indira Gandhi National Open University

पौराणिक मत के अनुसार आयु पुरुरवा और उर्वशी का पुत्र माना जाता है। आयु के सन्दर्भ में डॉ. श्रद्धा चौहान का मत है कि- मनुष्यनामों में परिगणित आयवः पद आयु शब्द का बहुवचनान्त रूप है। कौपीतकी ब्राह्मण की आयुर्वे मनुः की उक्ति जहाँ आयु को मनु के साथ समीकृत करती है वहीं तैत्तिरीयसंहिता आयुः प्राणः कहकर उसकी आध्यात्मिकता को पुष्ट करती है। आयवः आ उपसर्गपूर्वक यु धातु से निष्पन्न आयु मिश्रण और अमिश्रण का एक साथ बोधक है। अतः आयवः की पहुंच सभी विश (अन्तः प्रविष्ट) प्राणों तक मानी जा सकती है। सूर्य और उषा को अगर पुरुरवा और उर्वशी माना जाये तो आयु का अर्थ आकाशीय अग्नि सूर्य और उसकी रश्मिजन्य ताप है जो कालान्तर में नहुष का जनक माना जाता है और नहुष मरुद्गण का एक भेद माना जाता है। इस सन्दर्भ में यह मन्त्र द्रष्टव्य है-

परावतो ये दिक्षिषन्त आप्यं मनुप्रीतासो जनिमा विविस्वतः ।

ययातेर्ये नहुषस्य बर्हिषि देवा आसते ते अधि बुरवन्तु नः॥¹⁵

वाचस्पत्यम् में नहुष की व्युत्पत्ति इस प्रकार निर्दिष्ट है- नयते मायया इति नहुषः अथवा नह्यति सर्वाणि भूतानि मायया, इस अर्थ में यह बन्धने धातु से उपच प्रत्यय के प्रयोग से नहुष की सिद्धि होती है। इस मन्त्र के विश्लेषण में डॉ श्रद्धा चौहान का कथन है कि ये आयवः प्राण विवस्वान् के उस आशुदूत अग्नि को विश के प्रत्येक गण के लिये आहूत करते हैं, जबकि अग्नि स्वयं प्रथम आयु कहलाता है जिसे देव आयु के लिये नहुष का विशपति बनाते हैं। इसका अर्थ यह है कि प्रथम आयु के रूप में अग्नि को समष्टिगत ब्रह्म और द्वितीय आयु रूप में अग्नि को व्यष्टिगत जीवात्मा मानना उचित होगा।¹⁶ इसी सन्दर्भ में डॉ चौहान और भी विश्लेषण करती है - चित्तवृत्तियों के निरोध द्वारा सन्नहन में प्रवृत्त होकर भी जो अहंता विद्यमान रहती है, उसको नियन्त्रित करने के लिये अग्नि को आय के नहुष का विशपति इला को उसके मनुष्य पक्ष की शासिका बनाना आवश्यक है।¹⁷

द्वादश मन्त्र - त्व नो अग्ने तव देव पायुभिर्मघोनो रक्ष तन्वष्वच वन्द्या।

त्राता तोकस्य तनये गवामस्य निमेषं रक्षमाणस्तव व्रते॥

सायण कृत अर्थ- हे वन्दनीय अग्नि तुम अपने पालनों द्वारा धनयुक्त तथा पुत्रयुक्त हम लोगों की रक्षा करो। हे गायों के रक्षक तुम्हारे कर्म में निरन्तर सावधान हैं(ऐसे) हमारे पौत्रों की रक्षा करो।

दयानन्द भाष्य- हे देव सब सुख देने वाले और स्तुति करने योग्य तथा यथोचित सब की रक्षा करने वाले परमेश्वर सर्वाधिपति आपके सत्य पालन आदि नियम में प्रवृत्त और प्रशंसनीय धनयुक्त हम लोगों को और हमारे शरीरों को उत्तम रक्षादि व्यवहारों से प्रतिक्षण पालिये। रक्षा करते हुए आपके उक्त नियम में वर्तमान छोटे-छोटे बालक प्राणियों के मन आदि इन्द्रियां और गाय बैल आदि पशु हैं उनके तथा सब चराचर जगत् के प्रतिक्षण रक्षक अर्थात् अत्यन्त आनन्द देने वाले होइये। उक्त मन्त्र में स्वामी दयानन्द ने राजा के रूप में परमेश्वर का स्तवन किया है।

व्रत यह पद व्यापक अर्थ को लिये हुए है। निरुक्त में इस पद की व्याख्या इस प्रकार प्राप्त होती है- व्रतमिति कर्मनाम वृणोतीति सत इदमपीतरद्व्रतमेतस्मादेव निवृत्तिकर्म वारयतीति सतोऽन्नमपि व्रतमुच्यते यदावृणोति शरीरम्।¹⁸ इसी अंश पर दुर्गाचार्य अपनी टीका में कहते हैं- वृणोतीति एवं कर्तरिकारके सतः वृणोते तद्धि कर्म शुभं च कृतं सदावृणोति कर्तारम् ॥

त्रयोदश मन्त्र- त्वमग्ने यज्यवे पायुरन्तरो अनिषङ्गाय चतुरक्ष इध्यसे।

यो रातहव्योऽवृकाय धायसे कीरेष्विन्मन्त्रं मनसा वनोषि तम्॥

सायण कृत अर्थ- यजमान के पालक और चारो दिशाओ वाले हे अग्नि तुम (राक्षस आदि से) असम्बद्ध(यज्ञ) के लिये प्रदीप्त होते हो। अहिंसक (यज्ञ) के पोषण के लिए दत्तहवि मंत्रगायक के मंत्र को (आपके) मन से विस्तारित करते हैं।

दयानन्दकृत अर्थ- हे सभापति तू विज्ञान से विचार या वेदमन्त्र को सींचने वाले के सदृश होम में लेने-देने योग्य पदार्थों का दाता पालन का हेतु मध्य में रहने वाला और सेना के अङ्ग अर्थात् हाथी, घोड़े और रथ के आश्रय से युद्ध करने वाले और पैदल योद्धाओं में अच्छी प्रकार चित्त देता हुआ जिस पक्षपात रहित न्याययुक्त चूरी आदि दोष के सर्वथा त्याग और उत्तम गुणों के कारण तथा यज्ञ वा शिल्पविद्या सिद्ध करने वाले मनुष्य के लिये तेजस्वी होकर अपना प्रताप

दिखाता है। ताकि जिसको सेवन करता है उस प्रपंसनीय वचन कहने वाले विद्वान् से विनय को प्राप्त होके प्रजा का पालन किया करा।

चतुर्दश मन्त्र- त्वम् अग्ने उरुषंसाय बाधते रूपाहम् यद्रेक्णः परमं वनोशि तत्।

आध्रस्य चित्रमतिरुच्यसे पिता प्र पाकं शास्सि प्र दिषो विदुष्टः॥

सायण कृत अर्थ- हे अग्नि तुम नानाविध स्तुति करने वाले के लिये जो उत्तम वरेण्य धन है उसको वितरित करते हो और दुर्बल यजमान के प्रकृष्ट मति वाले पिता कहे जाते हो तथा शिशुरूप यजमान के लिये प्रकृष्ट रूप से दिशाएँ बताते हो।

दयानन्द कृत भाष्य- हे अग्ने विज्ञानप्रिय न्यायकारिन् जिस कारण उत्तम ज्ञानयुक्त नाना प्रकार के दुःखों से तारने वाले आप बहुत प्रकार की स्तुति करने वाले ऋत्विक् मनुष्य के लिये चाहने योग्य अत्युत्तम धन, पवित्र धर्म और उत्तम विद्वानों को अच्छी प्रकार चाहते हैं और राज्य को धर्म से धारण किये हुए पिता के तुल्य सब को शिक्षा करते हैं इसी से आप सब के माननीय हैं। उक्त मन्त्र में परमेश्वर के गुणा को राजा में उपमित करके व्याख्या की गयी है।

इस प्रकार इस मन्त्र में अग्नि के द्वारा स्तोताओं के मन में सुन्दर स्वरूप का उल्लेख करते हुए अग्नि के दिग्दर्शक स्वरूप का कथन प्राप्त होता है तथा अग्नि के दक्षिण दिशा में होने की भी सूचना प्राप्त होती है।

पंचदश मन्त्र- त्वमग्ने प्रयतदक्षिणं नरं वर्मेव स्यूतं परि पासि विश्वतः।

स्वादुक्षद्गा यो वसतौ स्योनकृत् जीवयाजं यजते सोपमा दिवः ॥

सायणकृत भाष्य- हे अग्नि तुम ऋत्विक् को दक्षिणा देने वाले मनुष्य को थैले से सनद्ध कवच के समान चारों ओर से रक्षित करते हो। निवासस्थान में स्वादिष्ट अन्न वाला जो यजमान भूतयज्ञ का यजन करता है वह स्वर्गीय उपमा(होता है)।

दयानन्दकृत भाष्य- हे अग्नि सब को अच्छी प्रकार से जानने वाले सभापति आप कवच के समान जो शुद्ध जल का भोक्ता सब को सुखकारी मनुष्य निवासदेश में नाना साधन युक्त यज्ञों से यज्ञ करता है उस अच्छे प्रकार विद्या धर्म के उपदेश करने और जीवों को यज्ञ कराने वाले अनेक साधनों सेकारीगरी में चतुर नम्र मनुष्य को सब प्रकार से पालते हो। ऐसे धर्मात्मा परोपकारी विद्वान् आप सूर्य से प्रकाश की उपमा पाते हो।

इस मन्त्र की व्याख्या में डॉ. श्रद्धा चौहान का मत है कि- अपने विभिन्न अंगों का ऐसा संस्कार और उपधान करना यज्ञ है जिससे सभी पापों की मुक्ति हो जाये। यही देवयज्ञ है। इसी आत्मयज्ञ को करने वाला श्रेयस्कर माना गया है। यही ऋग्वेद का जीवयाज है। जिसे समझने में भाष्यकारों ने स्वलन किया है। जिस अग्नि में यह यज्ञ सम्पादित किया जात है उसे सम्पूर्ण सूक्त में अनेकषः प्रमति, इडा, मेधिर,शिव,प्रथम ऋषि आदि कहा जाता है। यह विकृत पूर्व को अपर (सुसंस्कृत) रूप देने वाला तथा मनु के लिये द्यौ को शब्दायमान करने वाला होगा जिसे जैमिनीय ब्राह्मण में प्रजाः कहा गया। अत एव यह जीवयाज जीवात्मा का यज्ञ है और उपर्युक्त आत्मयज्ञ का ही बोधक है न कि स्वादिष्ट जीव-जन्तुओं के भक्षण का।¹⁹

इस प्रकार इस मन्त्र में पुनः अग्नि के आधिभौतिक रूप में उसके रक्षकस्वरूप की प्रपंसा करते हुए उसे भली प्रकार से सिले हुए कवच की उपमा दी गयी है तथा अग्नि की प्रेरणा से जो यजमान गृहागतों को सुस्वादु अन्न से तुष्ट करता है उसके स्वर्गप्राप्ति का अर्थवाद प्रस्तुत किया गया है।

षोडश मन्त्र- इमामग्ने शरणिं मीमृषो न इममध्वानं यमगाम दूरात्।

आपिः पिता प्रमतिः सोम्यानां भूमिरस्यकृषिकृन्मत्र्यानाम्॥

सायणकृत भाष्य- हे अग्नि हमारे इस कर्मप्रमाद को क्षमा करो दूर से, जिस इस मार्ग को हम चले गये (इस धृष्टता को क्षमा करो)। सोमयाजी मनुष्यो के (तुम) प्रकृष्ट मति वाले पालक, कर्मनिर्वाहक, दर्शन देने वाले हो।

दयानन्दकृत भाष्य- हे अग्ने सबको सहने वाले सर्वोत्तम विद्वान् जो आप शान्त्यादि गुणयुक्त मनुष्यों को प्रीति से प्राप्त और सर्वपालक उत्तम विद्यायुक्त नित्य भ्रमण करने और वेदार्थ का बोध कराने वाले हैं। तथा हमारी ये इस विद्यानाशक अविद्या को अत्यन्त दूर करने वाले आप और हम जिसको हम लोग दूर से उल्लंघन करके धर्ममार्ग के सम्मुख आवे उसकी सेवा करें।

सायण इस मन्त्र में आपि इस पद का अर्थ करते हैं - प्राप्त करने योग्य अग्नि तथा प्रमत्ति: इस पद का अर्थ करते हैं - प्रकृष्ट मननयुक्त तथा भूमि: का अर्थ भ्रामक करते हैं। इसी प्रकार ऋषिकृत का अर्थ अग्नि के दर्शन को करने वाले करते हैं। सायण के इस प्रकार के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि कहीं न कहीं अग्नि से उनका तात्पर्य शुद्धज्ञानपुंज से है जो ऋषियों द्वारा अपने अज्ञान से अथवा भ्रम रहित चित्त में साक्षत्कृत किया जाता है। इस प्रकार सायण ने इस मन्त्र में प्रमादकर्म हेतु अग्नि से क्षमायाचना की है सायण की यह क्षमायाचना कहीं न कहीं अग्नि के आधिदैविक अर्थ का संकेत करती है जिसे दयानन्द जी ने साक्षात् ग्रहण करके उसका आधिदैविक दिव्य स्वरूप प्रस्तुत किया है।

सप्तदश मन्त्र- मनुष्यवदग्ने अङ्गिस्वदङ्गिरो ययातिवत सदने पूर्ववच्छुचे।

अच्छ याह्या वहा दैव्यं जनमा सादय बर्हिषि यक्षि च प्रियम्।।

सायणकृत भाष्य- हे पवित्र अङ्गारस्वरूप अग्नि अभिमुख्यता से यज्ञशाला में मनुष्य के समान, ययाति के समान, पूर्व के समान अङ्गिरस के समान जाओ। दिव्यस्वरूपज न को लाओ, कुशाओं पर बैठाओ और प्रिय यजन करो।

दयानन्दकृत भाष्य- हे पवित्र प्राण के समान धारण करने वाले विद्याओं से व्याप्त सभाध्यक्ष आप मनुष्यों के जाने-आने के समान वा शरीरव्याप्त प्राण वायु के सदृश राज्यकर्मव्याप्त पुरुष के तुल्य या जैसे पुरुष यज्ञ के साथ कामो को सिद्ध करते कराते है या जैसे उत्तम प्रतिष्ठा वाले विद्वान् विद्या देने वाले हैं, जैसे सब को प्रसन्न करने वाले विद्वानों में अति चतुर मनुष्य को अच्छे प्रकार प्राप्त कीजिये उस मनुष्य को विद्या और धर्म की ओर प्राप्त कीजिये तथा उत्तम मोक्ष के साधन में स्थित और वहां उसको प्रतिष्ठित कीजिये।

अङ्गिरस यह पद भी स्वयं में विश्लेषणात्मक है। अग्नि गतौ धातु से इरुट् प्रत्ययपूर्वक इस पद की व्युत्पत्ति होती है। अङ्गिरस का निर्वचन इस प्रकार प्राप्त होता है- अङ्गिति अग्नि। यह ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न हुए थे अतः अङ्गिति ब्रह्मणा मुखत्रिसरति यह व्युत्पत्ति भी अङ्गिरस् के सन्दर्भ में प्राप्त होती है। अङ्गिरस का अङ्गिरस्त्व उसके अग्रगमन में निहित है। पुराणों एवं महाभारत के अनुसार के अनुसार अङ्गिरस ब्रह्मा के षट् मानसपुत्रों में से एक हैं। अग्रभूत अंग मुख से निर्गत अंगिरस् और याज्ञिक प्रक्रिया में अग्नि का अंगत्व इस साम्य के आधार पर अग्नि को अंगिरस् कहा जात है। अंगिरस् के सन्दर्भ में महर्षि अरविन्द का कथन है कि अंगिरस् शब्द अग्नि का सजातीय है क्योंकि जिस धातु अग्नि से निकला है वह अग्नि की धातु अगक केवल सानुनासिक रूप है। इन धातुओं का आन्तरिक अर्थ प्रतीत होता है प्रमुख या प्रबल अवस्थाभाव, गति, क्रिया, प्रकाश और इसमें अन्तिम अर्थात् प्रदीप्त या जलता हुआ प्रकाश इस अर्थ से ही अग्नि, आग, अंगार(दहकता कोयला, अंगारा) और अंगिरस् शब्द बने अतः अंगिरस् का अर्थ होना चाहिये ज्वालामय या दीप्त। वेद और ब्राह्मणग्रन्थों की परम्परा में भी अंगिरस् मूलतः अग्नि से निकट सम्बद्ध माने गये हैं।..... तो काफी स्पष्ट है कि अंगिरस् ऋषि यहां दिव्य अग्नि की प्रसरणशील ज्योतियां है जो द्युलोक में उत्पन्न होती है, इसलिये ये दिव्य ज्वाला की ज्योतियां है न कि किसी भौतिक आग की।²⁰ इस प्रकार इस मन्त्र के चतुर्धा विश्लेषण ने मनीषियों की गवेषणा को जागरित किया।

अष्टादश मन्त्र- एतेन अग्ने ब्रह्मणा वावृधस्व शक्ती वा यत्ते चकृमा विदा वा

उत प्रणेष्यामि वस्यो अस्मान्त्सं नः सृज सुमत्या वाजवत्या ।।

सायणकृत भाष्य- हे अग्नि तुम इस मन्त्र के द्वारा अभिवृद्धि को प्राप्त होवो। तुम से प्रदत्त शक्ति और ज्ञान से (मन्त्र का दर्पण) किया है। (उस मन्त्र से) हम सभी को प्रकृष्टरूप से श्रेय प्राप्त करवाओ। हम सभी को अन्न और सुन्दर बुद्धि से युक्त करो।

दयानन्दकृत भाष्य- हे अग्ने सर्वोत्कृष्ट विद्वान् आप वेदविद्या, उत्तम अन्न युद्ध और विज्ञान या श्रेष्ठ विचारयुक्त से हमारे लिये अत्यन्त धन सब प्रकार से प्रकट कीजिये और आप अपने उत्तम ज्ञान से नित्य नित्य उन्नति को प्राप्त कीजिये । आपका जो प्रेम है वह हम लोग करें और आप हम लोगों के श्रेष्ठ बोध को प्राप्त करें।

एतेन- अस्मत्प्रयुक्तेन ब्रह्मणा-सायण इसका अर्थ करते हैं-मन्त्रेण । (श. ब्रा. 7/1/1/5) के अनुसार ब्राह्मण शब्द यज्ञ एवं मन्त्र का बोधक है-ब्रह्म वै मन्त्र । दयानन्द ने इसे अग्नि का विशेषण माना है। इसी प्रकार शक्ति- सायण ने इस पद का व्याकरण की दृष्टि से विश्लेषण किया है- उनके अनुसार यहां तृतीयान्त पद के सुप्, टा का सुपां सुलुक् सूत्र से लोप होकर पूर्वसवर्णदीर्घ हुआ है तथा इसका अर्थ किया है अस्मदीया शक्त्या स्वामी दयानन्द ने इसका अर्थ युद्ध किया है। इसी प्रकार **वस्यः** यह पद भी विवेचनीय है। सायण इसका लक्षण वसुमत्तरत्वलक्षणम् अर्थात् श्रेयः करते हैं **दयानन्द-** अत्यन्त धन इस प्रकार अर्थ करते हैं। इस प्रकार यहां स्वामी दयानन्द के अनुसार जितने भी तृतीयान्त पद हैं वे अग्नि के विशेषण माने जायेंगे और इनका अर्थ होगा वेदविद्या, उत्तम अन्न, शक्ति और ज्ञान से सम्पन्न अग्नि। सायण के अनुसार सह करण सह तथा दोनों के योग में तृतीया होगी। ब्रह्मणा यह पद मन्त्र अर्थ का वाचक है, मन्त्र अग्नि के अभिवर्धन का कारण है अतः यहां कर्तृकरणयोस्तृतीया से तृतीया का प्रयोग उपपन्न है। इसी प्रकार शक्ति तथा विदा ये दोनों पद तृतीयान्त होकर यजमान के विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुए हैं। इसी प्रकार शक्ति पद को सायण ने तृतीयान्त मानकर मूल पद का अभिधेय अर्थ किया है स्वामी दयानन्द ने इसका लाक्षणिक अर्थ युद्ध ग्रहण किया है सायण के अनुसार वाजवत्या और सुमत्या दोनों में ही सह के योग में तृतीया का प्रयोग है। दोनों ही यजमान की अभीप्सित वस्तुएं हैं और यजमान इनका सायुज्य अग्नि देवता से प्राप्त करना चाहता है।

दोनों ही मन्त्रों के भाष्यों में पर्याप्त अन्तर है। सायण के अनुसार अग्नि देव की प्रदत्त शक्ति से यजमान मन्त्रों का उच्चारण करते हैं और उन्हीं से अन्न और सुन्दर मति प्रदान करने के लिये प्रार्थना करते हैं स्वामी दयानन्द ने मन्त्र में तृतीयान्त पदों को अग्नि का विशेषण मानकर अग्नि से प्रेम की याचना की है ।

अरविन्द वेदों से अत्यन्त चमत्कृत हैं । वेदों के विषय में उनकी धारणा है कि Vedas as a source of Indian civilization, it is religion it is philosophy it is culture is more in consonance²¹ इसलिए अरविन्द के अनुसार- वैदिक अग्नि के दो विशेष गुण हैं, ज्ञान और देदीप्यमानशक्ति प्रकाश और आग्नेयशक्ति। इससे यह सूचित होता है कि वह विश्वव्यापी देवाधिदेव की शक्ति है, ज्ञान अनुप्राणित सचेतनशक्ति या संकल्प है- यही है तपस् का स्वरूप, जो विश्व को व्यापे है और इसके सब क्रियाव्यापारों के पीछे स्थित है। अतएव अग्नि अपने व्यापारों के चैत्य और आध्यात्मिक अर्थ में उस संकल्प की अग्नि ही होगा जो अपने अन्तर्निहित और सहजात ज्ञान के कार्य करता है।²²

इस प्रकार वेद के अर्थ करने की विविध प्रक्रियाओं ने जहां एक ओर वेद का क्षेत्र व्यापक किया वहीं इनके अर्थ में घोर विसंगति की समस्या भी उत्पन्न की। वेदार्थ के असंतिकरण ने भारतीय इतिहास को अपूरणीय क्षति प्रदान की है। वेदार्थ के असंतिकरण का प्रमुख कारण वेदकथन की रूपकशैली है। रूपक अलंकारशास्त्र का प्रमुख अलंकार और नाट्यविधा का पर्याय है। **रूपारोपान्तु रूपकम्** । किसी वस्तु के समस्त विषयों या या गुणों का एकत्र विवर्तन रूपक के माध्यम से किया जाता है। रूपक जब अलंकार के रूप में प्रयुक्त होता है तब उपमेय उपमान के अभेद को प्रस्तुत करता है। जब सुन्दरी को देखकर कहा जाता है कि चांद आया है तो वहाँ उपमेय सुन्दरी और उपमान चांद का एकत्र रूप में कथन किया जाता है और यही शैली ऋग्वेद में प्रयुक्त की गयी। इस शैली के प्रयोग के कारण भी यास्क के पूर्वोक्तवचन में समाहित है। क्योंकि वैदिक ऋषियों के लिये मन्त्र प्रत्यक्षरूप थे और अपनी साधना में अरविन्द ने भी यही अनुभव किया । अरविन्द ने यह अनुभव किया कि मानवजीवन केवल आहार, निद्रा, भय या मैथूनोद्देष्टक ही नहीं अपितु वह पूर्णता और असीमता को प्राप्त करने के लिये प्राप्त हुआ है। अपने वास्तविक स्वरूप को प्राप्त करना अथवा स्वपिण्ड में स्थित दिव्य ऊर्जाओं की सहायता से सर्वोच्च सत्य, चित् और आनन्दस्वरूप का साक्षात्कार करवाना ही इन मन्त्रों का ध्येय रहा है। मन्त्र का बाह्यार्थ तो सदैव वही है जो बाह्य प्रज्ञा द्वारा देखा जा रहा है परन्तु आध्यात्मिक अर्थ चेतनान्वेषण के नवीन पथों का आरोहण करवाता है। भौतिक निरूपण सर्वथा व्यर्थ नहीं है। यह परम सत्ता की ज्ञानप्रेरित शक्ति है तथा पृथ्वी और द्यौः की मध्यस्थ है। मनुष्यों में स्थित आन्तरिक ज्वाला अग्नि है। अरविन्द ने अग्नि का विवेचन इस प्रकार किया है- अग्नि का अर्थ होता था बलवान, इसका अर्थ चमकीला या यह भी कह सकते हैं कि

शक्ति, तेजस्विता। इसलिये यह जहां कहीं भी आये, आसानी से दीक्षित को एक प्रकाशमय शक्ति के विचार का स्मरण करा सकता था, जो लोकों का निर्माण करती है और मनुष्य को ऊंचा उठाकर सर्वोच्च को प्राप्त करा देती है, महान कर्म का अनुष्ठान करने वाली है, मानव यज्ञ की पुरोहित है।²³ इस प्रकार अरविन्द ने यह अनुभव किया कि वेद में मानव व्यक्तित्व का निर्माण करने वाले तत्त्व सजीव रूप से वर्णित किये गये हैं। बाह्यरूप से जो पुरोहित है वह आन्तरिक रूप से दिव्य संकल्प या दिव्यशक्ति है। भौतिकरूप से वह अग्नि कहा गया है।

यदि वेदमन्त्रों के अर्थ की चर्चा की जाये तो वेदार्थ के त्रिविध होने के कारण भाष्यकारों के मतान्तर प्राप्त होते हैं। अरविन्द वेदमन्त्रों को प्रत्यक्ष मानते हैं और उनका विचार है कि वैदिक रूपको का प्रयोग उनके आध्यात्मिक अर्थ की मुख्यता के लिये है। वैदिक ऋषियों का यह विचार था कि उनके मन्त्र चेतना के उच्चतर गुणस्तरों से अन्तःप्रेरित हुए आये हैं और वे इस गुह्यज्ञान को रखते हैं। वेद के वचन उनके सच्चे अर्थों में केवल उसी के द्वारा जाने जा सकते हैं जो स्वयं ऋषि या रहस्ययोगी हो।²⁴

स्वामी दयानन्द अरविन्द के पूर्ववर्ती थे तथा सायण के पश्चाद्वर्ती अतः दयानन्द के विचारों पर सायण का प्रभाव था क्योंकि वे यज्ञीय परम्परा के आलोचक नहीं थे। सायणकाल तक आते-आते वेद केवल कर्मकाण्ड परक रह गये और मूल मन्त्रव्य से कर्मकाण्ड की अनुदारता देखी जा रही थी। सायण ने मन्त्रों का व्याकरणात्मक विश्लेषण तत्परता से किया है परन्तु मन्त्रों के रहस्यात्मक भाग को उन्होंने संकेत करके अध्येताओं के विश्लेषण हेतु वज्रसूच्युत्कीर्ण मणिमार्ग प्रस्तुत किया है। दयानन्द का काल वह था जब भारतभूमि स्वराज्य के लिये सज्ज हो रही थी। अत्यन्त अल्प ही सही भारतीयों में सुप्त राष्ट्रगौरव जाग्रत हो रहा था, उस काल में दयानन्द ने वेदों पर भाष्य की रचना की भारतीयों में प्राप्त आत्महीनता के निवारण के लिये आवश्यक था कि ऐसे साहित्य की रचना की जाये जो उनको आत्मगौरव की भावना से स्फूर्त कर दे। सायणकृत भाष्य कहीं न कहीं मनुष्यभेद प्रस्तुत कर रहा था इसलिये वेदार्थभाष्य में स्वामी दयानन्द वेदार्थ विषय में कहते हैं कि- सर्वेषां वेदानामीश्वरे मुख्येऽर्थे मुख्यतात्पर्यमस्ति। तत्प्राप्तिप्रयोजना एव सर्व उपदेशाः सन्ति। अतस्तदुपदेशपुरःसरणैव त्रयाणां कर्मोपासनाज्ञानकाण्डानां पारमार्थिकव्यावहारिकफलसिद्धये यथायोग्योपकाराय चानुष्ठानं सर्वमनुष्यैर्यथावत्कर्तव्यमिति²⁵ अतः दयानन्द अपने भाष्यभूमिका में स्पष्ट करते हैं कि अग्नि सूक्त में मुख्यता तो परमेश्वर की है क्योंकि वह तो सर्वगुणोपेत है परन्तु प्रकाश, गति, ज्ञान, गमन आदि यदि व्यवहारसिद्धि के हेतु अग्नि में घटित होते हैं तो उस दृष्टि से उसमें देवतापन लिया जाये तो कोई हानि नहीं है। स्पष्ट है कि दयानन्द वैदिक संस्कृति के प्रति समन्वयवादी दृष्टिकोण रखते हैं उनका मतान्तर वहीं प्रकट होता है जहां वैदिकज्ञान में विकृति होती है।

सायणकृत भाष्य में यद्यपि कर्मकाण्ड का दर्शन होकर वैदिक देवताओं का अतिशयोक्तिपूर्ण एवं अकल्पनीय मानवीय चित्रण प्राप्त होता है। इस सम्भावना को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि जिस समय सायण के समक्ष वेदभाष्य की चुनौती थी उस समय वैदिकज्ञान की दुरुहता के कारण और तात्कालिक ऐतिहासिक कारण से वेदज्ञान के प्रति अरुचि या अप्रवर्तना प्राप्त हो गयी हो अतः इस उद्देश्य को दृष्टिगत रखते हुए कथोपकथन वाला भाष्य रचा गया हो। कालान्तर में इसी भाष्य के कथोपकथनों के कारण वैश्विक पटल पर भारतीय संस्कृति अवनत स्वरूप के कारण दयानन्द ने पुनः अपने भाष्य के माध्यम से वेदार्थ संगतिकरण के माध्यम से भारतीयों का ध्यान अपनी उन्नत सांस्कृतिक परम्पराओं की ओर आकृष्ट करके स्वराज की प्रथम अलख को आलोकित किया जो हमें अरविन्द के भाष्य में पूर्ण ज्वालामाण स्वराजाग्नि के रूप में दिखायी देती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1 निरुक्त 7/1/1/

2 ऐ0ब्रा0 1/4

3 तै0सं0 5/5/1/4

4 नि0 7/4/1

5 निरुक्त-12/13

6 वा0सं02/4

-
- 7 वेद रहस्यम् उत्तरार्द्ध श्री अरविन्द सोसायटी, पाण्डीचेरी-2 1972, पृष्ठ,340
 - 8 मानव व्यक्तित्व की वैदिकगवेषणा, गवेषणा प्रकाशन, 2003 , पृष्ठ 48
 - 9 ऋ0 1/31/3 में उद्धृत सन्दर्भ नि07/7
 - 10 मानव व्यक्तित्व की वैदिक गवेषणा पृ0 46
 - 11 मानव व्यक्तित्व की वैदिक गवेषणा पृष्ठ 63
 - 12 मानव व्यक्तित्व की वैदिक गवेषणा पृष्ठ 27-28
 - 13 मानव व्यक्तित्व की वैदिक गवेषणा पृष्ठ 26
 - 14 ऋ010/88/11
 - 15 मानव व्यक्तित्व की वैदिक गवेषणा पृष्ठ 76
 - 16 ऋ0सं0 10/63/1
 - 17 मानवव्यक्तित्व की वैदिक गवेषणा- पृष्ठ 77
 - 18 मानवव्यक्तित्व की वैदिक गवेषणा पृ0 56
 - 19 निरुक्त 2/4/1
 - 20 मानवव्यक्तित्व की वैदिक गवेषणा पृ0-63
 - 21 वेद रहस्यम् पूर्वार्द्ध श्री अरविन्द सोसायटी, पाण्डीचेरी-2 1972 ,पृष्ठ 218
 - 22 The Mastic Fire Page-7
 - 23 वेद रहस्यम् पूर्वार्द्ध श्री अरविन्द सोसायटी, पाण्डीचेरी-2 1972 पृ0 356, 106-107
 - 24 वेद रहस्यम् पूर्वार्द्ध श्री अरविन्द सोसायटी, पाण्डीचेरी-2 1972, पृष्ठ -7
 - 25 ऋग्वेद भाष्यभूमिका-पृष्ठ 46